विमल मित्र की महान् कृति

रवीन्द्र पुरस्कार से सम्मानित

खरीदी कौड़ियों के मोल

द्वितीय खण्ड

खरीदी कौड़ियों के मोल

बिमल मित्र



द्वितीय खण्ड

स्वर्गीय पितृदेव सतीशचन्द्र मित्र
के श्रीचरणों में समर्पित

In the silence one can hear a soft monotonous dripping It is the dividends of the capitalist continuously trickling in, continuously mounting up. One can literally hear them multiply, the profits of the rich. And one can hear too, in between, the low sobs of the destitute, and now and then a harsher sound, like a knife being sharpened.

—Heinrich Heine
[1797 - 1856]

भूमिका

'रामायण' न लिखकर 'खरीदी कौड़ियों के मोल' क्यो लिखा — यह प्रथम खण्ड की भूमिका में बताया गया है। मैं वाल्मीकि नहीं हूँ, वैसी प्रतिभा भी मुझमें नही है। उन्होने सत्ययुग की कहानी लिखी है और मैंने कलियुग की। असल में इस काम को जितना आसान समझा था, उतना आसान नही रहा।

लिखने बैठा तो देखा कि कलियुग से सत्ययुग अधिक सत्य है। सत्ययुग में पुण्य की जीत निश्चित है और पाप की हार अनिवार्य! लेकिन कलियुग में वह सब नही है। इस युग में झूठे मुकदमे में फँसाकर निर्दोष व्यक्ति को पथ का भिखारी बनाया जा सकता है और समाज में दबदबा रहने पर कत्ल करके भी बेदाग छूटना मुश्किल नहीं है। इस युग में राम को हराकर अयोध्या के सिंहासन पर अधिकार करना भी रावण के लिए सम्भव है। यहाँ तक कि इस तरह समाज में प्रातःस्मरणीय बनने की मिसालें भी है। यह युग रुपये का है। यह युग कौड़ियों का है। कौड़ियो के युग की कहानी लिखने बैठकर इसीलिए बारबार मैंने महाकवि को याद कर अपने अहं को संतुष्ट करना चाहा है।

लेकिन इसके बावजूद इच्छा थी कि उपन्यास के अंतिम भाग में मैं भी वाल्मीकि की तरह रावण-वध पूरा कर सगौरव राम को अयोध्या के सिंहासन पर बैठाऊँगा। इसी कलकत्ता शहर में रामराज्य की प्रतिष्ठा कर इस उपन्यास को समाप्त करूँगा। धरती पर न सही, कम से कम साहित्य में गांधीजी के स्वप्न को साकार करूँगा। लेकिन वैसा न कर सका। विंश शताब्दी के शेषार्ध में अशुभ वुद्धि के चक्रान्त मे मेरी सारी योजना बेकार हो गयी।

वाटरलू के युद्ध के बाद सन् १८१५ ई० में जिन लोगों ने रावण को सेंट हेलेना टापू पर कैद कर हमेशा के लिए खत्म करना चाहा था, फिर उन्ही लोगों ने स्वार्थवश उसी रावण को सन् १९३२ ई० में जिंदा कर दिया। किसी समय जो फ्रान्स में नेपो-लियन था, वही जर्मनी का चान्सलर बन बैठा। जिस देश ने सन् १९३२ ई० में अधिक दाम पर जापान को लोहा बेचा था, सन् १९४२ ई० मे उसी देश में वही लोहा ब्याज के बदले बम बनकर लौट आया। फिर इंगलैंड के पौंड, अमरीका के डालर, फ्रान्स के फ्रैंक, जर्मनी के मार्क, रूस के रूबल, जापान के येन, इटली के लीरा और इंडिया के रुपये, याने दुनिया के सारे स्टॉक एक्सचेंजो का सारा माल-मता उन रावणों ने बाँटकर

अपने कब्जे में कर लिया। एक रावण अनेक बन गया। लोग समझ गये कि न्यूरेमबर्ग के ट्रायल में जिनको फाँसी दी गयी थी, सिर्फ उन्हीं को नहीं, बल्कि उनके मुकदमों का जिन्होंने फैसला किया था, उन सभी रावणों को अगर फाँसी पर लटकाया जाता तो अधिक निष्पक्ष न्याय होता। इसलिए रामराज्य की स्थापना चाहने से क्या होगा, दुनिया में कब रातोंरात रावणराज्य की स्थापना हो गयी है यह किसी को पता भी नहीं चल पाया। जब पता चला तब देर हो चुकी थी। उसी समय इस उपन्यास का रावण जेल से निकलकर अधिक क्षमताशाली बन बैठा। कभी इन्सान के लिए रुपया बना था, लेकिन उस समय रुपये के कारण घोषाल साहब जैसे लोग बन गये।

और सीता ? सीता का पाताल-प्रवेश ?

अगर इस युग में सीता जन-साधारण की इच्छा-आकांक्षा की प्रतीक है तो ताक़तवर के तक़ाज़े पर उसकी माँगें पूरी करते-करते कभी आधुनिक सीता की अकाल-मृत्यु हो चुकी है। आज मानवता को पहचानने के लिए भी रक्त-मांस से मूल्य चुकाना पड़ता है। साप्ताहिक पत्र 'देश' में जब मूल बँगला उपन्यास किस्तों में प्रकाशित हो रहा था, तब अगणित पाठक-पाठिकाओं ने मुझसे विशेष अनुरोध किया था कि किसी तरह सती का सर्वनाश न हो। लेकिन क्या वाल्मीकि सीता का पाताल-प्रवेश रोक सके थे ? वाल्मीकि जो नहीं कर सके, वह मैं कैसे कर सकता हूँ ? मुझमें उतनी योग्यता कहाँ है ?

फिर भी अपने मन में यही सोचकर सान्त्वना मिली थी कि यह भी शायद कलि की करामात है !

लेकिन नहीं, मेरी धारणा गलत थी। करामात कलि की नहीं, कौड़ी की है। डालर की है।

—विमल मित्र

एक महान् उपन्यास

बँगला साहित्य के वृहत्तम उपन्यास के रूप में 'खरीदी कौड़ियों के मोल' दो भागों में सुपरिचित है। अतीत के महाकाव्य का स्थान आज उपन्यास ने ले लिया है। 'खरीदी कौड़ियों के मोल' आधुनिक युग और जीवन का महाकाव्य है। इसमें कथानक की काल-परिधि अति विस्तृत नहीं है, बस एक बालक के बचपन से उसकी जवानी के मध्य तक। लेकिन कुछ वर्षों का यह समय बंगाल के लिए विपुल परिवर्तन का है। उसके सामने देश का स्वतंत्रता-आन्दोलन, नवजाग्रत युवसमाज, आत्मविस्मृत तीव्र आदर्श-बोध तथा गहरी सत्यपरायणता थी। लेकिन इन कुछ वर्षों की परत पड़ते ही देश की चारित्रिक दृढ़ता एकदम गायब हो गयी। गृहस्थी और आदर्श के द्वन्द्व से जर्जर मास्टर साहबों ने तब नेपथ्य भूमिका ले ली। नयी व्यवस्था में स्वतंत्रता का चरम दुरुपयोग मिस्टर घोषाल, हुसैन भाई और छिटे-फोंटा की शक्ति-पिपासा में प्रकट हुआ। इस राष्ट्रीय और सामाजिक चक्रवात का मध्यबिन्दु कथानायक दीपंकर है। उसके व्यक्तिगत जीवन में एक तरफ राष्ट्रीय संकट है तो दूसरी तरफ युग-यंत्रणा के प्रतिनिधि के रूप में सती और लक्ष्मी दी आदि हैं। दीपंकर सिर्फ कथा का केन्द्रबिन्दु नहीं है, उसी का दृष्टिकोण कथा का रसभाष्य है। उसके चरित्र में 'ऐक्शन' या कर्मठता का नितान्त अभाव किसी-किसी को खटक सकता है। लेकिन वह तो वहाँ निष्क्रिय दर्शक मात्र है। कैमरे की आँख की तरह उसने कथा के सूत्रों को सिर्फ यान्त्रिक कुशलता से पकड़ रखा है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व प्रकट नहीं हुआ। लेकिन यह याद रखना जरूरी है कि परिवेश को सार्थक ढंग से उभारने के लिए शायद ऐसे ही सादे परदे की जरूरत थी। कैनवस सफेद न होने पर बहुरंगी चित्र में जान नहीं आती।

'खरीदी कौड़ियों के मोल' उपन्यास काफी हद तक 'एपिक' जैसा है, यह पहले ही बताया गया है। 'एपिक' याने महाकाव्य में व्यक्तिजीवन या गृहजीवन मुख्य नहीं होता, इसमें देश और काल का विशाल चित्र प्रकट होता है। उसमें मोटी कूँची फेरकर विशाल युग को जीवन्त करना पड़ता है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ सफल है। दूसरों की तुलना में इसमें चरित्र बहुत कम है। फिर भी पारिपार्श्विक और ग... रचना में

कथाकार को गजब की सफलता मिली है। इसमें देश, काल और समाज भी पात्र बन गये हैं और वे जीते-जागते हैं। स्थिर-लक्ष्य राष्ट्र का आदर्शभ्रष्ट होना और उसका स्वाभाविक परिणाम इसमें निपुण सहृदयता से आँका गया है। अन्त में आशावादी परिणाम-चिन्तन के बीच कथा की समाप्ति होती है।

कथा के नामकरण में आज के युगजीवन के 'मॉटो' की ओर संकेत किया गया है। अघोर भट्टाचार्य ने कहा था — कौड़ियों से सब कुछ खरीदा जा सकता है। उसी का सबूत मिस्टर घोषाल और छिटे-फोंटा जैसे लोगों ने दिया। लेकिन दीपंकर का आदर्शवाद उस नकारात्मक मतवाद से टकराकर रह गया। उसके जीवन ने प्रमाण दिया है कि कौड़ियों से कम से कम जीवन का आनन्द नहीं खरीदा जा सकता। आधुनिक युग के प्रति लेखक की यही व्यंजनामय उक्ति है।

—श्री प्रमथनाथ विशी

खरीदी कौड़ियों के मोल

द्वितीय खण्ड

फिर वही दफ्तर। फिर वही जीवन। नयी कुर्सी पर बैठकर भी मानो पुराने दफ्तर की बू मिलती है, जिससे मन कसैला हो उठता है। मिस्टर घोषाल के कमरे में बैठकर भी दीपंकर मानो पुराने दिनों की बातें भूल नही पाता। सवेरे का वह माहौल अब भी दिमाग पर छाया हुआ है। न जाने कब फाइलें आकर मेज पर जमा हुईं और कब वे चली गयी — सब काम मानो मशीन से हुआ। मशीन की तरह दीपंकर काम करता है। मशीन की ही तरह दफ्तर की रेलगाड़ी भी मानो लुढ़कती हुई सिर्फ चलना ही जानती है। वह रुकना नही जानती। ट्रेन का तो फिर भी ड्राइवर बदलता है, इंजन बदलता है और गार्ड बदलता है। ट्रेन की यात्रा में फिर भी विभिन्नता है। वह एक डिस्ट्रिक्ट से दूसरे डिस्ट्रिक्ट को जाती है। वह एक ऋतु से दूसरी ऋतु में पहुँचती है। रोड-साइड स्टेशन से जंक्शन और जंक्शन से ब्रांच — सर्वत्र उसकी गति है। लेकिन दफ्तर में मानो ऋतु भी नही बदलती। कुर्सी बदलने पर भी यहाँ का माहौल नही बदलता।

आँखें फाइल में गड़ी हैं, लेकिन मन मानो कही और उड़ा जाता है। मानो आँखों के सामने वह दृश्य प्रकट हो उठता है। दफ्तर की फाइलों की भीड़ में भी मानो सती झाँक जाती है। सती की वह मूर्ति आँखों के आगे घूम जाती है। सती की आँखों में आँसू नही है। सती के शरीर में प्राण नही है। सती मानो काठ बनी यहाँ भी खड़ी है। सती मानो सर्वत्र आकाश में, वायु में और अंतरिक्ष में फैली हुई है। मानो सती कह रही है — मैं सब कुछ सहन करूँगी, मैं सबको भूल जाऊँगी — मुझे अपनी शिक्षा और अपने अस्तित्व की जरूरत नही है — मुझे कुछ भी नही चाहिए, मैं सभी कुछ को तिलांजलि दे दूँगी — मैं आत्महत्या करूँगी ....

जर्नल सेक्शन के के० जी० दास बाबू ने चाय के गिलास से मुँह हटाकर कहा — बचपन में किताब में पढ़ा था कि बहुत बड़ा पेट होना ठीक नही है, आँधी चलने पर गिरना पड़ता है — बात गलत नही है भाई ....

रमेश बाबू ने पूछा — क्यों बड़े बाबू, क्या हुआ ?

— अरे, यही सेन बाबू की बात सोच रहा हूँ। हाँ, यही कुर्सी, जिस कुर्सी पर आप बैठे है, उसी कुर्सी पर कभी सेन साहब बैठता था। एनामेल के इसी गिलास में वह भी चाय पीता था। अब वही हमलोगों का सेन साहब है। [illegible] भाग्य कहते हैं।

रमेश बाबू ने पूछा — कैसा देखा ? बड़ा घमंड है ?

— घमंड का क्या पूछना ! पहले तो फिर भी मुलाकात होने पर हँसकर बात करता था, लेकिन आज एकदम पहचान ही न सका जनाब। रॉबिन्सन साहब के कुत्ते को बिस्कुट खिलाकर वह हाथों हाथ स्वर्ग पा गया है। फाइल लेकर कमरे में गया तो बोला — अभी नहीं, बाद में — ! इसी का नाम रुपया है ! रुपये की ऐसी ही महिमा है ....

योगेन बाबू बोला — लेकिन उसका लक बड़ा अच्छा है बड़े बाबू ! सिर्फ लक ....

— लक नहीं योगेन बाबू, यह लक नहीं है। मैं भी अगर उस तरह साहब के पाँवों में तेल लगा सकता तो मेरा भी लक चमक सकता था। लेकिन मेरी ऐसी आदत जो नहीं है ....

गांगुली बाबू के कमरे में आते ही सारी चर्चा एकाएक रुक गयी। गांगुली बाबू से सेन साहब की घनिष्ठता की बात किसी से छिपी नहीं है ! लेकिन सिर्फ जर्नल सेक्शन में ही नहीं, ट्रैफिक ऑफिस में भी यही चर्चा हो रही है। रामलिंगम बाबू उदास चेहरा लिये सेन साहब के कमरे से लौट आया।

रंजित बाबू ने पूछा — क्या हुआ बड़े बाबू, साहब ने सिग्नेचर किया ?

रामलिंगम बाबू बोला — नहीं, बोला — अभी नहीं, बाद में ....

रंजित बाबू बोला — उस गद्दी पर जो भी बैठता है, वही अकड़ने लगता है। अभी कल तक वह कितना भला आदमी था, लेकिन आज कैसा बदल गया ! यह सेन साहब का दोष नहीं है बड़े बाबू, सारा दोष उस कुर्सी का ही है ....

सिर्फ ट्रैफिक ऑफिस में ही नहीं, एस्टैब्लिशमेंट सेक्शन में भी यही चर्चा चल रही है। वहाँ जो पुराने लोग हैं, उन्होंने कभी सेन साहब को क्लर्क के रूप में इस दफ्तर में आते देखा था। हृदय चपरासी से पूछने पर शायद वह भी बता सकता है। हृदय चपरासी ने कितनी ही बार उसे बकरे की घुघनी और मीट चॉप खिलाया है। ट्रैफिक ऑफिस के सुपरिटेंडेंट नृपेन बाबू का वह आदमी था। जो लोग नये हैं, वे सब मुँह बाये यह कहानी सुन रहे हैं। भाग्य है जनाब, सब भाग्य है ! नहीं तो देखिए न, इसी दफ्तर में कितने क्लर्कों ने ए-बी ग्रेड में जिंदगी बिता दी। कोई उनके बारे में नहीं सोचता। धरा रह गया आपलोगों का एस्टैब्लिशमेंट मैनुअल और धरा रह गया कोड रूल। कुत्ते को बिस्कुट खिलाने की बात बोगस है। असली चीज है भाग्य। एकादश भाव में वृहस्पति रहने पर ऐसा सभी का होता है !

— अरे, जानते हैं जनाब, मैंने अपने कानों से सुना है कि सेन साहब नौकरानी का लड़का है। कालीघाट में किसी बामन के घर उसकी माँ खाना पकाती थी !

— क्या बक रहे हैं, ऐसा भी कभी हुआ है ?

— होता है भई, होता है, इस दुनिया में सब कुछ होता है। जानते हैं, मुसोलिनी मोची का लड़का है ! उसका बाप सड़क के किनारे बैठा जूते सिला करता था।

फिर बताइए, जर्मनी का हिटलर भी पहले क्या था? कभी वह भीख माँगा करता था! अरे, मेरी बात पर विश्वास न हो तो नृपेन बाबू अभी तक जिंदा हैं — चले जाइए न, ट्राम के टिकट के छः पैसे खर्च करके उससे मिल जाइए और पूछ लीजिए।

सवेरे से एक-एक कर बहुत-से लोग कांग्रैचुलेट कर गये। इंजीनियरिंग ऑफिस से शुरू करके ऑडिट आफिस, सी० एम० ओ० ऑफिस और कंट्रोलर ऑव स्टोर्स। सब से दूर की जान-पहचान है। फिर भी दीपंकर उनकी बिरादरी में आ गया है। अब से उसकी मर्यादा दूसरी तरह की है। अब से वह दफ्तर के समाज में ब्राह्मण है। 'हैव नॉट्स' के दल से प्रोमोशन पाकर वह 'हैव्ज' के दल में चला आया है। अब वह क्लर्कों के लिए उनका आदर्श बन गया है। अब से वह दूसरे क्लर्कों के लिए उज्ज्वल उदाहरण के रूप में विराजमान रहेगा। सब उसकी तरफ उंगली उठाकर दिखायेंगे और कहेंगे — देखो, कैसा ब्रिलियंट फ़िगर है! तुमलोग भी अच्छी तरह से मन लगाकर काम करोगे तो कभी सेन साहब बन सकोगे — तुमलोग भी लेट ऑवर्स तक दफ्तर में काम करोगे तो कभी इसी तरह प्रोमोशन पाओगे! लेकिन दीपंकर को लगा कि असल में इससे बड़ा धोखा शायद और कुछ नहीं है। पूरे स्टाफ को खटा लेने के लिए शायद इतना बड़ा भुलावा दूसरा नहीं है। ऑफिस के ऐडमिनिस्ट्रेशन ने उसे प्रोमोशन देकर एकदम सोने का हिरण बना दिया है। फिर उस 'सोने के हिरण' के लालच में पड़कर कितने 'रघुकुल' नष्ट होंगे कौन जानता है! अपने कमरे में बैठा दीपंकर आत्म-तिरस्कार से बारंबार घबड़ा उठने लगा! बाहर निकलने में भी उसे शर्म लगने लगी। उसे लगा कि दफ्तर *की दीवारें भी मानो उसे देखने के लिए घात लगाये बैठी हैं! गेट के दरवान से शुरू करके* मेहतर, झाड़दार, चपरासी और प्यून तक सबकी जबान पर उसका ही नाम है। गेट के बगल में लगी विशिष्टों की नामावली में आज उसका नाम भी जुड़ गया है। रॉबिन्सन साहब का नाम हटाकर उसकी जगह मिस्टर घोषाल का नाम लिखा गया है। मिस्टर घोषाल के नाम की जगह दीपंकर का नाम है। फिर भी सोचने पर आश्चर्य होता है कि कैसे और किस योग्यता के बल पर दीपंकर यहाँ इस कुर्सी पर आकर बैठ गया। कहाँ है उसका कृतित्व। क्या वह ज्यादे काम का है? क्या वह ज्यादा मेहनती है? क्या वह अधिक पढ़ा-लिखा है? क्या वह योग्यतम होने के कारण वह पोस्ट पा गया है या उस ऊँचे पोस्ट पर पहुँच जाने से वह योग्य बन गया है? फिर क्या दुनिया की सभी पद-मर्यादाओं के मूल में यही बात है? यही धोखाधड़ी? दफ्तर के लोग आज किसे कांग्रैचुलेट कर रहे हैं? उसे या उसकी कुर्सी को? लेकिन ऐसा भी तो कोई दिन [illegible] *जिस दिन उसे इस कुर्सी से हटना पड़ेगा। उस दिन क्या होगा?*

फिर वह नृपेन बाबू! ट्रैफिक ऑफिस के सुपरिटेंडेंट नृपेन बाबू! [illegible] में वे धोती और कमीज पहने रहते हैं। मैली धोती पहनकर गमछा [illegible] नहाने जाते हैं। कालीघाट के मंदिर में जाकर वे माँ-माँ कहकर ऐसा [illegible] समाँ बँध जाता है। लेकिन कभी-कभार दफ्तर आना होता है तो वे [illegible]

पहनकर ही आते हैं। एकदम पहले की तरह चुरुट चवाते हुए वे खटाखट दफ्तर में घुसते हैं। वे सोचते हैं कि शायद पहले की तरह सब लोग सलाम करेंगे, खातिर दिखायेंगे और डरेंगे। लेकिन उनको आते देखकर भी हरनाथ स्टूल पर वैठा रहता है। वह उन्हीं के सामने स्टूल पर वैठकर वीड़ी पीता रहता है—वीड़ी का धुआँ छोड़ता रहता है।

हरनाथ पूछता है—कैसे हैं नृपेन वावू ?

नृपेन वावू एक वार इस सेक्शन में तो एक वार उस सेक्शन में जाकर वैठते हैं। सव लोग अपने काम में लगे रहते हैं। वे उनलोगों से गप लड़ाने की कोशिश करते हैं। लेकिन अव वे लोग क्यों उनकी खातिर करने लगे ?

फिर भी नृपेन वावू पूछते हैं—क्या खवर है रामलिंगम वावू ?

लेकिन रामलिंगम वावू के पास गप लड़ाकर वरवाद करने लायक वक्त नहीं है। फिर काफी देर तक इधर-उधर घूम-फिरकर नृपेन वावू घर लौट जाते हैं। कोई उनकी तरफ देखता भी नहीं। फिर भी किसी को खाली वैठा देखते ही वे उसके पास जाकर वैठ जाते हैं। फिर वे खुद उससे वात करने लगते हैं। पूछते हैं—तुमलोगों का नया साहव कैसा काम कर रहा है ?

—कौन ? आप किस साहव की वात कर रहे हैं सर ?

—अरे, वही जो नया छोकरा है ! तुम सव लोगों का साहव। मैंने ही उसे नौकरी में लगाया था। अव तो वह पुरानी वात हुई। उसकी माँ आकर रोने लगी थी। हाथ जोड़ने और पाँवों पड़ने लगी थी। मैंने भी सोचा कि गरीव का लड़का है—लगा दी नौकरी। खैर, उसे वता-वताकर मैंने अंग्रेजी में ड्राफ्ट लिखना सिखाया, कितनी वार उसकी अंग्रेजी काट दी, लेकिन वह छोकरा मन लगाकर सुनता और सीखता था। वरावर उसे काम सीखने का शौक था। उसमें तरक्की करने की इच्छा थी ! फिर वह छोकरा अव भी मेरी इज्जत करता है। यह तो कहना पड़ेगा भइया, कि वह एहसानफरामोश नहीं है। वताओ, आज दुनिया में कौन किसे याद रखता है। फिर भी उसका जो उपकार मैंने किया था, कम से कम उसे तो उसने याद रखा ही है।

इतना कहकर नृपेन वावू देखते हैं कि जिनसे यह सव कहा जा रहा है, वे अपने काम में लग गये हैं। नृपेन वावू वहाँ से उठ जाते हैं। कहते हैं—अव मैं भी चलूँ—तुमलोग तो अपने-अपने काम में जुटे हो—वड़ा अच्छा है !

फिर दीपंकर के कमरे के दरवाजे के सामने जाकर नृपेन वावू मधु से कहते हैं—क्यों रे, कैसा है रे मधु ? तू मुझे पहचान रहा है ?

यह कहकर नृपेन वावू दरवाजा ठेलकर अन्दर जाने लगे। मधु वोला—अन्दर मत जाइए वावूजी, साहव नाराज होंगे।

—नाराज होंगे मतलव ! तुझे पता है कि तेरे साहव को किसने नौकरी दिलायी है ?

—ठीक है बाबूजी, लेकिन आप बिना पूछे अन्दर चले जायेंगे तो मेरी नौकरी चली जायेगी। साहब इस समय काम कर रहे हैं!

यह सुनकर नृपेन बाबू बिगड़ जाते हैं। कहते हैं—क्या तू जानता है कि मैं कौन हूँ?

—आप कोई भी हों बाबूजी, मैं साहब का नौकर हूँ, मैं आपको अंदर नहीं जाने दूँगा। पहले आप स्लिप दीजिए!

—स्लिप देना पड़ेगा? मुझे?

यह कहते हुए मानो नृपेन बाबू की जबान लड़खड़ा गयी। वे इधर-उधर देख लेते हैं। फिर जो भी मिल गया, उसी को वे बुलाते हैं। कहते हैं—अरे गोविंद, देखो! अपने दफ्तर के चपरासी का तमाशा देखो। मैं सेन साहब के कमरे में जा रहा था। तुम तो जानते हो कि सेन साहब को मैंने ही नौकरी दिलायी थी—आज मुझसे कहा जा रहा है कि स्लिप देना पड़ेगा। आजकल तुमलोगों के चपरासियों की हिम्मत कितनी बढ़ गयी है। मेरे वक्त में कोई इस तरह से बात करता था तो मैं उसे निकाल बाहर करता था। मैंने जिंदगी में कभी किसी की बेअदबी बरदाश्त नहीं की और मेरे ही साथ यह गुस्ताखी....

गोविंद बाबू कुछ नहीं बोले।

नृपेन बाबू बोले—आजकल तुमलोगों के एस्टैब्लिशमेंट का बड़ा बाबू कौन है?

गोविंद बाबू बोले—सुधीर बाबू।

—कौन? सुधीर? वह भी बड़ा बाबू बन गया है! अच्छा है, मैं जाकर उसी से कहता हूँ....

कहकर नृपेन बाबू जल्दी-जल्दी बरामदा पार कर एस्टैब्लिशमेंट सेक्शन की तरफ चले गये। वहाँ जाकर वे देखते हैं कि सब नये क्लर्क हैं। वे किसी को पहचान नहीं पाते। सुधीर बाबू भी अपनी कुर्सी पर नहीं है, शायद साहब के कमरे में गये हैं। नृपेन बाबू थोड़ी देर तक वहीं खड़े रहते हैं। फिर भी सुधीर दिखाई नहीं पड़ता। इधर नृपेन बाबू को मानो कोई पहचान ही नहीं पाता। न जाने कैसे बेवकूफ की तरह नृपेन बाबू सब की तरफ देखते रहते हैं। फिर वे चुरट का कश लगाते हुए बाहर चले आते हैं। अब वे एकदम बाहर सड़क पर आकर ट्राम में बैठ जाते हैं।

सवेरे दफ्तर में आते ही दीपंकर ने चपरासी से कह दिया था — आज कोई भी मेरे कमरे में न आये ....

के० जी० दास वावू, रामलिंगम वावू और सुधीर वावू, जो भी मिलने आया वही लौट गया। सेन साहव काम में लगे हैं। सेन साहव के पास अभी फुर्सत नहीं है।

पास-क्लर्क हरीश वावू भी एक वार मिलने और नमस्कार करने आया था। हरीश वावू का यही काम है। सवेरे से शाम तक साहवों के कमरे में घुसकर 'गुडमार्निंग' करना ही उसका नियम है। हमेशा से वह ऐसा ही करता आ रहा है। यही करके वह अपनी छोटी-सी नाव को जीवन-वैतरणी के घाट पर लगा सका है। इसलिए आज सेन साहव की पदोन्नति होने से उसका भी एक कर्तव्य था। यही कर्तव्य-पालन अंत में काम देता है। लेकिन मधु ने उसे दरवाजे के पास ही रोक दिया और उससे कहा — नहीं वावू, अभी अन्दर मत जाइए ....

— क्यों रे, अन्दर क्यों नहीं जाऊँगा ? कैसी वात कर रहा है तू ?

मधु वोला — हाँ वावू, सेन साहव ने मना कर रखा है ....

हरीश वावू इस पर भी माननेवाला जीव नहीं है। वोला — क्या तू मुझे पहचान नहीं रहा है ? मैं पास-वावू हूँ। पास लेने के लिए तुझे मेरे ही सेक्शन में जाना पड़ेगा !

मधु भी वड़ा चालाक है। उसने कहा — फिर स्लिप दीजिए ....

— वाह रे ! तू मुझसे स्लिप माँग रहा है ! क्या तूने मुझे नया आदमी समझ लिया है ?

यह कहता हुआ हरीश वावू अपनी इज्जत वचाकर वहाँ से खिसक गया। उस दिन मधु ने अन्दर झाँककर देखा था। सेन साहव और दिनों की तरह नहीं लगा था। और दिनों की तरह उसके चेहरे पर हँसी नहीं थी। साहव जव कमरे में आया था, तव भी उसकी मुद्रा गंभीर थी। साहव ने एक-दो वार घंटी वजायी थी। मधु अन्दर जाकर फाइल ले आया था। लेकिन साहव ने ज्यादा वात नहीं की थी। न जाने साहव का चेहरा कैसा उतरा हुआ था। मधु फाइल लेकर चला आया था। थोड़ी देर वाद उसने शीशे के दरवाजे के उस पार झाँका था और सेन साहव उसे न जाने कैसा अनमना सा लगा था। साहव की आँखें फाइल पर नहीं थी। टेविल की तरफ भी उसकी निगाह नहीं थी। मानो किसी भी तरफ उसका ध्यान नहीं था। न जाने वह अपनी धुन में क्या सोच रहा था। मधु ने सोचा था — क्या नया प्रोमोशन मिलने से साहव को ऐसा हो गया है ! क्या प्रोमोशन मिलते ही साहव रातों-रात वदल गया है।

दीपंकर सब कुछ खोलकर बतायेगा। उनके पोस्ट से जो उत्तरदायित्व जुड़ा हुआ है उसे अलग करके उस दफ्तर ने उसे सिर्फ पोस्ट दिया है। सिर्फ उस पोस्ट की तनख्वाह उसे दी गयी है। वास्तविक अधिकार उससे छीन लिया गया है। इसके बाद भी क्या उसका वहाँ रहना उचित है? क्या वह अपना उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ है? अगर ऐसा है तो उसे प्रोमोशन क्यों दिया गया? यह भी तो एक तरह का अपमान है। यह भी तो उसके मनुष्यत्व पर आघात है? अगर उत्तरदायित्व ही नहीं मिला तो तनख्वाह लेकर वह क्या करेगा? उत्तरदायित्व हीन मर्यादा तो उसके सम्मान पर आक्षेप करता है! अगर उत्तरदायित्व नहीं देना चाहते तो प्रोमोशन भी मत दो। किसने तुम लोगों से प्रोमोशन मांगा था? तुम्हीं लोगों ने मुझे प्रोमोशन दिया है, अब तुम्हीं लोग कह रहे हो कि चलो, हमने तुम्हारा उत्तरदायित्व कम कर दिया है। तुम लूले जगन्नाथ की तरह बिना पोर्टफोलियो के मिनिस्टर बने रहो। ...

शायद प्राणमथ बाबू कहेंगे — लेकिन नौकरी छोड़ देने पर तुम्हारी समस्या का हल तो नहीं होगा। बहुत-से दूसरे लोग हैं जो स्वेच्छा से इस अपमान को सहने के लिए तैयार हो जायेंगे — इस संसार में अवसरवादियों की कमी तो नहीं है!

इस पर दीपंकर पूछेगा — फिर मैं क्या करूं, बता दीजिए सर। आज दिन भर मैं सिर्फ सोचता रहा हूँ और बारबार मन कर रहा है कि नौकरी छोड़ दूँ — मेरा कोई है भी नहीं, जिससे सलाह-मशविरा करूं। मेरी माँ भी यहाँ नहीं है, लेकिन यह होती भी तो क्या कर लेती! वह तो ये सब बातें समझती नहीं। इसलिए मैं आपके पास आया हूँ ....

चौड़ी सड़क के बाद ही सँकरी गली है। उसी गली में प्राणमथ बाबू का मकान है। बहुत सोच-विचार करता हुआ दीपंकर मकान के पास गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि कमरे में बहुत-से लोग थे। पूरा कमरा भरा हुआ था। सब खद्दर पहने हुए। सब किसी बात पर बहस कर रहे हैं। बीच में कुर्सी पर प्राणमथ बाबू बैठे हुए हैं। अभी दो जनों में जबर्दस्त बहस छिड़ी हुई है। बीच-बीच में फारवर्ड ब्लाक, कांग्रेस, वल्लभभाई पटेल, पंत जी आदि के नाम सुनाई पड़ रहे हैं।

— अरे जनाब, गोविन्दवल्लभ पंत का-सा कड़ा नर्व किसका है बताइए? नहीं तो जो रिजोल्यूशन पढ़ने से लोग घबड़ा गये, पंतजी उठकर उसे धाराप्रवाह पढ़ गये। सुभाष बोस के एगेन्स्ट खड़े होने की उस समय किसमें हिम्मत थी! महात्मा गांधी तक उस दिन डर गये थे!

— आज स्टेट्समैन ने क्या लिखा है, आपने देखा है प्राणमथ बाबू?

इतने में अचानक किसी ने उसे देख लिया और बुलाया — अरे, दीपू ....

अब तक वे दिखाई नहीं पड़े थे। छिटे और फोंटा दोनों भाई उस महफिल में ·· हैं। फोंटा ने ही पहले देखा है। उसने कहा — मास्टर साहब; अपना दीपू ·ंग्ग को तो आप जानते हैं न?

गया ! उसकी तनख्वाह वढ़ी है तो दुनिया में किसका क्या वना या विड़गा ? इससे उसके अलावा और किसका भला हुआ है ? क्या इसीसे उसके मनुष्यत्व को सम्मान देना होगा ?

मिस्टर घोपाल ने पहले दिन ही लिस्ट वनाकर दी थी और कहा था — अव से ये सव फाइलें मैं ही डील करूंगा सेन ....

दीपंकर आश्चर्य में पड़ गया था। उसने कहा था — आप क्यों करेंगे सर। मैं ही वह सव कर सकता हूं ....

मिस्टर घोपाल ने कहा था — नहीं, मैंने मिस्टर क्रॉफोर्ड से कह दिया है कि वे सव मेरे केस हैं, मैं अपने पास रखूंगा ....

मिस्टर घोपाल के केसों का मतलव है पब्लिक से उसके कॉरेस्पॉण्डेन्स, स्टाफ का प्रोमोशन और वैगन। वे ही सव मामले जिनमें वाहर वालों से घूस मिल सकती है, पब्लिक में इज्जत वढ़ती है और रोज दस लोग मिलने आते हैं। एक वैगन वीड़ी के पत्ते वुक करने पर जहाँ सात सौ रुपये प्रॉफिट है, वहीं मिस्टर घोपाल को तीन सौ रुपये ब्राइव में मिल सकते हैं। स्टाफ के प्रोमोशन के मामले में भी वही वात है। विना ब्राइव के मिस्टर घोपाल से कुछ नहीं मिल सकता। पब्लिक भी ब्राइव देने के लिए तैयार रहती है। जो ब्राइव नहीं लेता, वह वेकार है। रेल की नौकरी में वह अनफिट है ! फिर भी दीपंकर को प्रोमोशन मिला है। प्रोमोशन पाकर वह उसी कुर्सी पर दिन भर गरदन झुकाये वैठा काम करता रहा ! पता नहीं, इतना वड़ा अपमान वह दिन भर कैसे वरदाश्त करता रहा !

कालीघाट का मोड़ आते ही दीपंकर ट्राम से उतर पड़ा। पास ही प्राणमथ वावू का मकान है। प्राणमथ वावू के अलावा और किससे इस मामले में वात की जा सकती है ! और कौन उसे अच्छी सलाह दे सकता है ? पुरानी और जानी-पहचानी वह सड़क आज भी भीड़ से भरी थी। दोनों तरफ दुकानों की कतारें। वत्तियाँ जल जाने से सड़क मानो झलमला रही थी। चारों तरफ वस टीन के शेड और धुआँ। दीपंकर पैदल प्राणमय वावू के मकान के सामने पहुँचा, लेकिन वहाँ पहुँच कर उसे दुविधा अनुभव हुई।

शायद सव कुछ सुनकर प्राणमथ वावू आश्चर्य में पड़ जायेंगे और कहेंगे — क्या इसी लिए तुम नौकरी छोड़ दोगे ?

दीपंकर कहेगा — जी हाँ, मैंने यही निश्चय किया है। जहाँ मनुष्य की मर्यादा नहीं है, वहाँ से वेतन लेना पाप है सर !

शायद प्राणमय वावू कहेंगे — लेकिन संसार में क्या कोई किसी को मर्यादा देता है दीपंकर ? मर्यादा लेनी पड़ती है — जवर्दस्ती करके लेनी पड़ती है।

दीपंकर कहेगा — लेकिन इसके लिए मैं लड़ तो नहीं सकता सर !

प्राणमथ वावू शायद कहेंगे — वात क्या हो गयी है, खोलकर वताओ न ....

दीपंकर सब कुछ खोलकर बतायेगा। उसके पोस्ट से जो उत्तरदायित्व जुड़ा हुआ है उसे अलग करके उस दफ्तर ने उसे सिर्फ पोस्ट दिया है। सिर्फ उस पोस्ट की तनख्वाह उसे दी गयी है। वास्तविक अधिकार उससे छीन लिया गया है। इसके बाद भी क्या उसका वहाँ रहना उचित है? क्या वह अपना उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ है? अगर ऐसा है तो उसे प्रोमोशन क्यों दिया गया? यह भी तो एक तरह का अपमान है। यह भी तो उसके मनुष्यत्व पर आघात है? अगर उत्तरदायित्व ही नहीं मिला तो तनख्वाह लेकर वह क्या करेगा? उत्तरदायित्व हीन मर्यादा तो उसके सम्मान पर आक्षेप करना है! अगर उत्तरदायित्व नहीं देना चाहते तो प्रोमोशन भी मत दो। किसने तुमलोगों से प्रोमोशन माँगा था? तुम्हीं लोगों ने मुझे प्रोमोशन दिया है, अब तुम्हीं लोग कह रहे हो कि चलो, हमने तुम्हारा उत्तरदायित्व कम कर दिया है। तुम लूले जगन्नाथ की तरह बिना पोर्टफोलियो के मिनिस्टर बने रहो।....

शायद प्राणमथ बाबू कहेंगे — लेकिन नौकरी छोड़ देने पर तुम्हारी समस्या का हल तो नहीं होगा। बहुत-से दूसरे लोग हैं जो स्वेच्छा से उस अपमान को सहने के लिए तैयार हो जायेंगे — इस संसार में अवसरवादियों की कमी तो नहीं है!

इस पर दीपंकर पूछेगा — फिर मैं क्या करूँ, बता दीजिए सर। आज दिन भर मैं सिर्फ सोचता रहा हूँ और बारबार मन कर रहा है कि नौकरी छोड़ दूँ — मेरा कोई है भी नहीं, जिससे सलाह-मशविरा करूँ। मेरी माँ भी यहाँ नहीं हैं, लेकिन वह होती भी तो क्या कर लेती! वह तो ये सब बातें समझती नहीं। इसलिए मैं आपके पास आया हूँ....

चौड़ी सड़क के बाद ही सँकरी गली है। उसी गली में प्राणमथ बाबू का मकान है। बहुत सोच-विचार करता हुआ दीपंकर मकान के पास गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि कमरे में बहुत-से लोग थे। पूरा कमरा भरा हुआ था। सब खद्दर पहने हुए। सब किसी बात पर बहस कर रहे हैं। बीच में कुर्सी पर प्राणमथ बाबू बैठे हुए हैं। अभी दो जनों में जबर्दस्त बहस छिड़ी हुई है। बीच-बीच में फारवर्ड ब्लाक, कांग्रेस, वल्लभभाई पटेल, पंत जी आदि के नाम सुनाई पड़ रहे हैं।

— अरे जनाब, गोविन्दवल्लभ पंत का-सा कड़ा नर्व किसका है बताइए? नहीं तो जो रिज़ोल्यूशन पढ़ने से लोग घबड़ा गये, पंतजी उठकर उसे धाराप्रवाह पढ़ गये। सुभाष बोस के एगेन्स्ट खड़े होने की उस समय किसमें हिम्मत थी! महात्मा गांधी तक उस दिन डर गये थे!

— आज स्टेट्समैन ने क्या लिखा है, आपने देखा है प्राणमथ बाबू?

इतने में अचानक किसी ने उसे देख लिया और बुलाया — अरे, दीपू....

अब तक वे दिखाई नहीं पड़े थे। छिटे और फोंटा दोनों भाई उस महफिल में बैठे हुए हैं। फोंटा ने ही पहले देखा है। उसने कहा — मास्टर साहब; अपना दीपू आया है। दीपू को तो आप जानते हैं न?

प्राणमथ बाबू ने दीपंकर की तरफ देखा और कहा — कहो बेटा, क्या खबर है ?

दीपंकर बोला — आपसे मिलने चला आया सर ।

— बोलो, क्या काम है ?

फोंटा कुर्सी छोड़कर आगे बढ़ आया । बोला क्यों रे, कांग्रेस का मेम्बर बनेगा क्या ?

प्राणमथ बाबू बोले — नहीं, नहीं, तुम गवर्नमेंट की नौकरी करते हो, तुम्हें मेम्बर बनने की जरूरत नहीं है, नौकरी में अड़चन पड़ सकती है ।

दीपंकर बोला — नौकरी के बारे में ही आपसे परामर्श करने आया था, लेकिन अभी रहने दीजिए, मैं बाद में किसी दिन आऊँगा ....

यह कहकर दीपंकर चला आ रहा था । फोंटा बोला — तुझसे मेरा एक काम है दीपू — तेरे घर पर आऊँगा — कब तुझे फुर्सत रहेगी ?

यह कहता हुआ फोंटा दीपंकर के साथ बाहर आया ।

दीपंकर ने पूछा — क्या काम है, अभी बताओ न !

फोंटा तब तक सँकरी गली में आकर खड़ा हो गया था । वह जगह थोड़ी अँधेरी थी । साउथ कैलकटा कांग्रेस का वाइस-प्रेसिडेंट फटिक भट्टाचार्य उस हलके अँधेरे में खड़ा था । आज मानो किसी जरूरी काम से उसे दीपंकर की जरूरत पड़ गयी थी । दीपंकर ने पूछा — क्या काम है बताओ न !

फोंटा बोला — तुझे कांग्रेस का मेम्बर बनना होगा ।

— मैं तो गवर्नमेंट का आफिसर हूँ ! मेरा मेम्बरशिप नहीं हो सकता ।

फोंटा बोला — एकदम हो सकता है ! मैं कह रहा हूँ, हो सकता है ! मैं कांग्रेस का वाइस-प्रेसिडेंट हूँ, मैं तुझे मेम्बर बनाऊँगा, कोई जान भी नहीं पायेगा । तू सिर्फ बैलट बॉक्स में वोट डालेगा ....

— किस चीज का वोट ?

फोंटा बोला — प्रेसिडेंट का इलेक्शन होगा ! तू सिर्फ चुपचाप अपना दस्तखत कर देगा, फिर वोट के बाद मैं तेरा नाम काट दूँगा, कोई जान भी नहीं पायेगा — तेरे दफ्तर में भी कोई जान नहीं पायेगा ।

— लेकिन उसमें तुम्हारा क्या फायदा है ?

फोंटा बोला — कांग्रेस का फायदा है ! और कांग्रेस का फायदा सारे देश का फायदा है । फिर कांग्रेस का काम करने पर बाद में तेरा भी फायदा है । जब स्वराज होगा, तब तेरी नौकरी में और प्रोमोशन होगा । उस समय सब साहब लोग चले जायेंगे । और तू सब का राजा होगा । अभी तू चार सौ तनख्वाह पा रहा है, उस समय हजार रुपये पायेगा । अभी जिन पोस्टों पर अंग्रेज साहब हैं, वे सब पोस्ट तुम सबों को मिल जायेंगे ।

दीपंकर बोला — मुझे माफ करो भाई, मैं उस सब में नहीं जाऊँगा ....

फोंटा बोला — अरे, तुझसे स्वराज करने के लिए कौन कह रहा है, तू सिर्फ वोट डालकर अलग हो जायेगा। इसके अलावा तुझे और कुछ भी नहीं करना पड़ेगा।

— लेकिन उसमें तुम्हारा क्या स्वार्थ है ?

— मेरा स्वार्थ है, इसीलिए मैं कह रहा हूँ। मैं यहाँ का प्रेसिडेंट बन सकूँगा !

दीपंकर बोला — क्यों, प्राणमय बाबू तो प्रेसिडेंट हैं ही, वे प्रेसिडेंट रहेंगे तो अच्छा होगा ....

फोंटा बोला — नहीं रे, प्राणमय बाबू रहेंगे तो अच्छा नहीं होगा ! वे बड़े सीधे हैं। उतने सीधे आदमी से देश का काम नहीं चलता ! इस काम में तो 'तू डाल-डाल तो मैं पात-पात' होना पड़ता है। मास्टर साहब से तो वह सब नहीं हो सकता ! वे तो बस कहते रहेंगे — अहिंसा ! अरे भइया, अहिंसा कहने और सुनने के लिए ठीक है। ब्रिटिश गवर्नमेंट के मुँह पर तो अहिंसा का प्रचार करना होगा, लेकिन अन्दर-अन्दर काम साधने के लिए जो कुछ करना जरूरी है, वह तो करना पड़ेगा। उसमें फेअर-फाउल नाम की कोई चीज नहीं है ! यही जैसा वोट है। फॉल्स वोट न हो तो प्राणमय बाबू को भगाया नहीं जा सकता ! और तेरे प्राणमय बाबू जब तक रहेंगे, तब तक कांग्रेस की तरक्की कभी नहीं हो सकती।

अवाक् दीपंकर के चेहरे के पास हाथ ले जाकर फोंटा बोला — अच्छा, मैं तेरे घर आऊँगा। समझ गया ? फार्म लेता आऊँगा — बता, कब आऊँ ?

दीपंकर को घृणा होने लगी। कोई जवाब न देकर वह उसी अँधेरे में मानो दौड़ता हुआ सड़क पर आ गया।

फोंटा ने पीछे से फिर बुलाया। कहा — सुन दीपू .. .

यह कहकर फोंटा खुद पास आ गया। आवाज धीमी कर वह बोला — देख, तू अपना वोट तो देगा ही, तेरे मुहल्ले में जो-जो हैं, उनसे भी मेम्बर बनने के लिए कहना ....

दीपंकर बोला — मुहल्ले में किसी से भी मेरी जान-पहचान नहीं है।

फोंटा बोला — नहीं है तो क्या हुआ, हम दोनों जाकर जान-पहचान कर लेंगे। तू मेरे बारे में बताना। मैं जिंदगी में कितनी बार जेल गया हूँ, यह सब तो तू जानता ही है। प्राणमय बाबू से कम बार मैं जेल नहीं गया — है न ?

दीपंकर ने कोई जवाब नहीं दिया।

— फिर अगर कोई रुपया माँगता है तो वह भी मैं दे सकता हूँ।

— रुपया ?

दीपंकर अवाक् हो गया। फोंटा दीपंकर को रुपया देना चाहता है !

फोंटा ने दीपंकर की प्रतिक्रिया की तरफ कोई ध्यान दिये बिना कहा — सारा रुपया मैं देने को तैयार हूँ। अपने पास से मैं रुपया खर्च करूँगा। जितने मेम्बर तू

बना देगा, पर-हेड एक रुपया पा जायेगा। फिर जो मेम्बर मुझे वोट देंगे, वे भी एक-एक रुपया पायेंगे। बता, तू राजी है?

फोंटा दीपंकर के चेहरे की तरफ देखता रहा। दीपंकर भी एकटक फोंटा के चेहरे की तरफ देखने लगा। दीपंकर को लगा कि यह मानो अघोर नाना हैं। मानो अघोर नाना की उम्र बहुत कम हो गयी है। मानो अघोर नाना ने ही कालीघाट कांग्रेस के वाइस-प्रेसिडेंट फटिक भट्टाचार्य के रूप में नया जन्म लिया है। मानो अघोर नाना उसे सड़ी मिठाई दिखाकर ललचा रहे हैं। मानो अघोर नाना अब और चालाक हो गये हैं, और चतुर, और धूर्त! बहुत पहले सन् १८८५ ई० में इस कांग्रेस का जन्म हुआ था! कितनी ही खूनी घड़ियाँ पार कर और कितने ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, मदनमोहन मालवीय और देशबंधु के त्याग और वीरता की मर्यादा से पुष्ट होकर कांग्रेस यहाँ आ पहुँची है! इसी कांग्रेस के नाम पर कितने लोगों ने जीवन, यौवन, अतीत, वर्तमान और भविष्य को तिलांजलि दी है! बचपन में दीपंकर ने दूनी चाचा के जमावड़े में कितने ही दिन अखबारों की कितनी ही खबरों पर छिड़ी जबर्दस्त बहस में न जाने कितनी बातें सुनी थीं! आज भी उसे वे सब याद हैं। देशबंधु सी० आर० दास के बारे में सन् १९२५ में स्टेट्समैन ने लिखा था — India's evil genius, servant of chaos. His spiritual house is Moscow, the general head-quarters of the forces of hate. उस समय दीपंकर या किरण कोई भी इन वाक्यों का मतलब ठीक-ठीक समझ नहीं पाया था! लेकिन उस अखबार पर बड़ा गुस्सा हुआ था। कितने दिन, कितने साल उन दोनों ने उस अखबार को छुआ तक नहीं। उसके बाद सी० आर० दास की मृत्यु के दिन उनके मन की हालत, सोने के कार्तिक के घाट के उस साधु की बात और दूसरी अनेक घटनाएँ, अनेक स्मृतियाँ उस दिन दीपंकर की आँखों के आगे मानो फिर तिरने लगीं। अँधेरी गली में फोंटा के सामने खड़े रहते समय उसकी इच्छा हुई कि एक घूंसा मारकर फोंटा का जबड़ा तोड़कर चूर-चूर कर दूँ। जिस तरह उसने लक्ष्मी दी के मकान में अनंत बाबू को घूँसा जमाया था, उसी तरह फोंटा को भी सड़क पर सुला देने की उसे इच्छा हुई। सी० आर० दास की कुर्सी पर फोंटा बैठेगा! जिस कुर्सी पर सुभाष बोस बैठा है, जिस कुर्सी पर प्राणमथ बाबू बैठा है, उसी कुर्सी पर फॉल्स वोट के बल पर फटिक भट्टाचार्य बैठेगा! फटिक भट्टाचार्य! इससे तो कांग्रेस का खत्म हो जाना अच्छा है। इंडिया को स्वराज न मिले, वह भी अच्छा है। फोंटा अगर कांग्रेस का प्रेसिडेंट न बने और इंडिया हमेशा पराधीन रहे तो वह भी दीपंकर बरदाश्त करेगा! उसमें उसे कोई दुःख नहीं है।

— हाँ, एक रुपये पर अगर तू राजी नहीं होता तो दो रुपये सही, लेकिन गारंटी देनी होगी कि सब लोग मुझे ही वोट देंगे ....

इतने में फोंटा अचानक बेचैन हो उठा और बोला — अरे, तू जा क्यों रहा है? सुन — सुन ....

●●●

—अरे तू कहाँ जा रहा है, सुन, सुन ....

लक्ष्मी दी की आवाज है। केशव दरवाजा खोलकर कहीं जा रहा था, उसके पीछे से लक्ष्मी दी की आवाज सुनाई पड़ी। केशव और लक्ष्मी दी दोनों दरवाजे के सामने दीपंकर को देखकर आश्चर्य में पड़ गये!

—अरे तू? क्या खबर है? सती की कोई खबर मिली?

फिर केशव की तरफ देखकर लक्ष्मी दी बोलीं—तू जा केशव, आठ बोतल सोडा ले आना और दो सेर बरफ—जा, एक रुपये का पान भी ले लेना, साथ में कटी सुपारी, चूना और जर्दा भी रहे—देर मत करना, जल्दी आना ....

अब दीपंकर की तरफ देखकर लक्ष्मी दी बोली—क्यों रे, सती की क्या खबर है? फिर वहाँ तू गया था?

गलियारे में दाखिल होते ही दीपंकर को मानो माहौल कुछ बदला हुआ लगा। गलियारे के छोर पर कई जोड़े जूते रखे थे। दूर से दिखाई पड़ा—आँगन में खूब रोशनी है। तरह-तरह के मसालों से खाना पकने की खुशबू मिली। मानो इस घर में कोई उत्सव है। कैसा उत्सव? क्या लक्ष्मी दी के बेटे का जन्मदिन है? क्या लक्ष्मी दी का बेटा आया हुआ है? या लक्ष्मी दी की शादी की सालगिरह है?

लक्ष्मी दी बोली—अन्दर आ जा ....

दीपंकर बोला—लगता है, आज आपलोगों के घर में कुछ हो रहा है?

लक्ष्मी दी बोली—अरे, बड़ी मजेदार बात हो गयी है।

—कैसी मजेदार बात?

—चल तुझसे सब बता रही हूँ। क्या तू उन लोगों के साथ बैठेगा? सुधांशु, सुधांशु के दोस्त और चौधरी भी अपनी अपनी टोली के साथ वहाँ मौजूद हैं। कई बोतल ह्विस्की लाये हैं। फिर न्यू मार्केट से फाउल भी लाये हैं। मेरे यहाँ सब परांठे और मांस खायेंगे।

दीपंकर बोला—छोड़िए, उन लोगों के पास नहीं जाऊँगा ....

—फिर चल, अपने मिस्टर दातार के कमरे में बैठ। वहीं बैठकर मिस्टर दातार से गप लड़ा, वह भी अपने कमरे में अकेला बैठा है। मैं भी तुझे याद कर रही थी!

लक्ष्मी दी के साथ चलते-चलते दीपंकर ने अचानक पूछा—एकाएक मांस और परांठे का इंतजाम क्यों हुआ है, लक्ष्मी दी? ऑकेजन क्या है?

ऑकेजन कोई ऐसा नहीं है। सुधांशु ने मुझे कुछ रुपये दिला दिये हैं—

पाँच सौ के करीव । उन लोगों के दफ्तर में तरह-तरह के माल खरीदे जाते हैं ! इस वार सुपारी खरीदने का टेंडर था । मैंने वही टेंडर दिया । तीन हजार रुपये की सुपारी वेचकर मुझे पाँच सौ रुपये मिल गये । उसी वहाने खाना-पीना हो रहा है ।

— लेकिन आपने इतनी सुपारी कहाँ से खरीदी ?

लक्ष्मी दी हँसी । वोली — मैं कहाँ से खरीदूँगी । सुधांशु ने ही सव किया । सुधांशु ने टेंडर दिया और उसी ने विल पास किया । असल में सुधांशु ही सव कुछ है । मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ा ....

ज्यादा पावर का वल्व लगाया है । रसोईघर में मांस पकने की खुशबू चारों तरफ महमहा रही है । आँगन में जूतों का पहाड़ लग गया है । सुधांशु ही सव खर्च कर रहा है । असल में सुधांशु ही इस मकान का मालिक है । अनन्त वावू के चले जाने के वाद सुधांशु आकर उसी के सिंहासन पर जम गया है । छोटे-से कमरे में ही सव ठेलमठेल करके जमीन पर वैठ गये हैं । फर्श पर चटाई विछी है । गोल वाँधकर वैठे सव ताश में मशगूल हैं । वगल में ह्विस्की के गिलास हैं । पान की प्लेट है और सिगरेट का डिव्वा ।

दीपंकर को वगल के कमरे में ले जाकर लक्ष्मी दी वोली — तू मिस्टर दातार से वातें कर, मैं अभी आ रही हूँ ....

यह कमरा छोटा-सा है । इस कमरे में उत्सव की कोई चहल-पहल नहीं है । दो कुर्सियाँ है, चौकी और कपड़े रखने के लिए अलगनी । इसी में मिस्टर दातार साफ कोट-पैंट पहने भूत जैसे चुपचाप एक कुर्सी पर वैठे हैं । याने लक्ष्मी दी ने उन्हें विठा रखा है ।

दीपंकर ने पूछा — आप ठीक है न मिस्टर दातार ?

मिस्टर दातार ने सिर हिलाया और कहा — हाँ ....

— मुझे पहचान रहे हैं ?

— दीपू वावू !

अद्भुत स्मृति शक्ति है । शायद मिस्टर दातार सव कुछ समझ रहे हैं । शायद वे सव कुछ देख भी रहे हैं — सव कुछ महसूस भी कर रहे हैं । लेकिन शायद कोई उपाय नहीं है । उपाय न रहने की लज्जा से वे सिर झुकाये एक किनारे पड़े हैं । एक ही मकान में वगल के कमरे में ह्विस्की और जुए का दौरदौरा चल रहा है और यहाँ इस कमरे में चरम अक्षमता की सजीव प्रतिमूर्ति विराज रही है । क्षोभ रहने पर भी प्रकट करने का उपाय नहीं है । विद्रोह करने की शक्ति नहीं है । शरीर टूट चुका है, स्वास्थ्य नष्ट हो चुका है और यही लेकर एक जीवंत साक्षी अपनी घड़ियाँ गिन रहा है ।

— आप कुछ मत सोचिए । आप फिर अच्छे हो जायेंगे । देख लीजिएगा, आप फिर अपना कारोवार शुरू कर सकेंगे !

मिस्टर दातार बोले — कर सकूंगा ?

— जी हाँ, कर सकेंगे। आप तो ठीक हो ही गये हैं। पहले आपको जैसा देखा था, उसमे तो आप बहुत अच्छे हैं। लक्ष्मी दी के कारण ही आप इतनी जल्दी ठीक हो सके हैं। थोड़े दिन बाद आप एकदम स्वस्थ हो जायेंगे। अब ज्यादा दिन आपको कष्ट भोगना नही पड़ेगा।

मिस्टर दातार काफी देर कोशिश करके बोले — बहुत दिन ....

— किस बात के बहुत दिन ?

— बहुत दिनों से बीमार हूँ ....

दीपंकर समझ नही पाया कि मिस्टर दातार क्या कहना चाहते हैं। लेकिन इतना समझ में आया कि बहुत-सी बातें, बहुत-सा दुःख और बहुत-सारी शिकायतें उनकी छाती में जमा हैं। उसके बारे में कहने और सुनने की किसी को फुर्सत नहीं है। बगलवाले कमरे में हँसने और बोलने की आवाज सुनाई पड़ रही है। घर में मांस पकने की खुशबू आ रही है।

अचानक मिस्टर दातार बोले — मटन ....

दीपंकर बोला — जी हाँ, घर में मटन पक रहा है। आप भी मटन खायेंगे।

मिस्टर दातार शायद समझ गये। बोले — मैं नही खाऊंगा ....

— क्यों नही खायेंगे ? मटन खाने में क्या हर्ज है ? आप तो पहले मटन खाते थे ?

एकाएक मिस्टर दातार मानो बड़े अनमने हो गये। मानो अपने मन में वे कुछ सोचने लगे। फिर बोले — सिगरेट !

— क्या आप सिगरेट पियेंगे ? मैं तो सिगरेट नही पीता, उस कमरे से लाने के लिए बोले देता हूँ।

लक्ष्मी दी आने पर उससे सिगरेट मंगवाने की बात दीपकर के दिमाग में आयी। पहले मिस्टर दातार कितनी सिगरेटें पीते थे। एक के बाद दूसरी। वही आदमी आज कैसा हो गया है। सुदूर बर्मा से वह सिर्फ लक्ष्मी दी के लिए कलकत्ते आया था। अपना काम-काज-कारोबार सब छोड़कर सिर्फ लक्ष्मी दी के लिए वह आया था। लेकिन अब ? कहाँ गयी लक्ष्मी दी ? कहाँ गया उसका कारोबार ? और कहाँ गया वह खुद ? उस आदमी ने तो अन्त तक अपने को भी खो दिया।

— वे सब कौन हैं ?

पागल मिस्टर दातार के मुँह से अचानक यह सवाल सुनकर दीपंकर चौंक पड़ा। एक पागल के मन में भी सवाल पैदा हुआ है ! मानो उस पागल ने भी सब देख लिया है ! मानो काफी दुविधा के बाद उस पागल ने दीपकर से वह सवाल पूछ ही लिया !

— हाँ, अब बता, तू क्या कह रहा था ?

यह कहती हुई लक्ष्मी दी कमरे में आकर चौकी पर बैठ गयी। बोली — अब केशव आया, मांस पकने में अभी कुछ देर है। बता, तू सती के यहाँ फिर गया था ?

दीपंकर बोला — मैं फिर नहीं गया, इसीलिए आपसे पूछने आया कि आप कुछ जानती हैं कि नहीं।

लक्ष्मी दी बोली — उसके बाद तो मैं इधर लगी हूँ, फिर मेरे पास समय कहाँ है बता ? रात को तो मुझे जरा भी मौका नहीं मिलता।

दीपंकर ने पूछा — कल सवेरे एक बार जा सकेंगी ?

लक्ष्मी दी बोली — अब मैं नहीं जा सकूंगी भाई ....

— फिर वहाँ की खबर कैसे मिलेगी ?

लक्ष्मी दी बोली — तू ही एक बार चला जा न !

फिर जरा रुककर लक्ष्मी दी बोली — अब जाने की कोई जरूरत नहीं है। तूने पिताजी के पास खबर भेज दी है न ?

दीपंकर बोला — जी हाँ, मैंने टेलीग्राम कर दिया है। दफ्तर जाकर सबसे पहले टेलीग्राम ही भेजा है ....

लक्ष्मी दी बोली — तूने ठीक किया है। अब कोई चिंता नहीं है। देख लेना, पिताजी आकर सती को कुछ दिन के लिए ले जायेंगे, उसके बाद सब ठीक हो जायेगा। तू फिकर मत कर ! फिर इसके अलावा ससुराल में कब कौन सास प्यार से बहू को अपने सिर पर बिठा रखती है। ससुराल का मतलब ही है तकलीफ ! थोड़ी-बहुत ऐसी तकलीफ हर बहू को बरदाश्त करनी ही पड़ती है ....

दीपंकर को फिर भी न जाने कैसी बेचैनी महसूस होने लगी। आज दिन भर दफ्तर में झंझट रही। दिन भर वह आत्मग्लानि भोगता रहा। फिर भी वह सती की बात भूल नहीं पा रहा है। वह सती की ससुराल में बाहरवाले आँगन में सबकी आँखों के सामने सती की दारुण सजा देख आया है। उसके बाद वह कोई काम चैन से नहीं कर सका। घर लौटकर उसे माँ की चिट्ठी भी नहीं मिली। मानो उसकी छाती सूनी हो गयी है। शायद इसी लिए दफ्तर में उसका मन किसी से बात करने या मिलने का नहीं हुआ। फिर वह पैदल प्राणमथ बाबू के घर गया। फिर पैदल ही यहाँ लक्ष्मी दी के घर आया। लेकिन यहाँ वह किसलिए आया ? क्या उसे उम्मीद थी कि लक्ष्मी दी से सती को खबर मिलेगी ? फिर घर में भी तो निस्संग शून्यता है। घर लौटकर भी तो हताश चिंता का जाल बुनने के अलावा उसके पास कोई काम नहीं है। अब सहारा है तो बस उसी काशी का !

लक्ष्मी दी ने फिर आश्वस्त किया — तू क्यों बेकार इतना सोच रहा है ?

दीपंकर बोला — यही सोच रहा हूँ कि हमीं तो उसके इस अपमान के लिए जिम्मेदार हैं।

— क्यों ? हम कैसे जिम्मेदार हैं ? हमने जो कुछ किया, उसके भले के लिए

किया। वह अपनी ससुराल में सुख से रहे, इसीलिए हम उसे वहाँ से गये। फिर अंत में वह भी जाने के लिए तैयार हो गयी थी।

फिर भी दीपंकर को मानो संतोष न हुआ। वह बोला — टेलीग्राम मिलते ही आपके पिताजी चले तो आयेंगे न?

लक्ष्मी दी बोली — जरूर आयेंगे। सती को पिताजी बहुत चाहते हैं।

दीपंकर बोला — फिर पिताजी के आने पर सब तय हो जायेगा — है न लक्ष्मी दी।

— हाँ, हाँ, सब तय हो जायेगा। तू बेकार फिकर मत कर। औरतों का मन मर्दों की तरह कमजोर नहीं होता है रे! इतनी छोटी-सी बात पर औरतें टूटा नहीं करतीं। तू मुझे नहीं देख रहा है! मैं अगर इतनी कमजोर होती तो क्या इस घर को इस तरह सँभाल पाती!

मिस्टर दातार दोनों की बातें मन लगाकर सुन रहे थे। दीपंकर ने एक बार उनकी तरफ देखा। फिर वह चलने के लिए तैयार हुआ।

सँकरा गलियारा पार कर दीपंकर बाहर सड़क पर आ गया। लक्ष्मी दी दरवाजे तक साथ आयी थी। उसने सांत्वना देने के लिए कुछ बातें कही भी थी। लेकिन दीपंकर सारी बातें सुन नहीं पाया था। अँधेरे निर्जन सड़क के समुद्र में वह डूब गया था।

लड़ाई शुरू हो गयी है — जंग छिड़ गया है — टेलीग्राफ — टेलीग्राफ....

हाँफता हुआ एक आदमी दौड़ रहा है। सारा कालीगंज मानो उसकी चिल्लाहट से चौंक पड़ा। पहले तो उधर दीपंकर का ध्यान नहीं गया था। वह अपनी ही चिंता में डूबा हुआ था। फिर अचानक उसे लगा कि दुनिया पर से बिजली की तेज लहर दौड़ गयी।

दीपंकर को आज भी याद है कि उस दिन रात के अँधेरे में उस अपरिचित हॉकर ने इस दुनिया में किस तरह महामारी को निमंत्रण दिया था। पहले कालीगंज के मोड़ पर वह भयानक आमंत्रण सुनाई पड़ा था। वायुमंडल को चीरकर, कर्कश स्वर में एक आर्तनाद। — टेलीग्राफ। टेलीग्राफ।

शायद वह हॉकर आरा, दरभंगा या मुंगेर जिले के किसी छोटे-से अपरिचित गाँव का निवासी है! शायद सत्तू और गुड़ खाकर रोज सवेरे साइकिल से अखबार बेचने निकलता है। शायद फुटपाथ पर सोकर उसने रात बितायी है और किसी दफ्तर में धूप का काम करके दिन बिताया है। शायद रुपये के लालच से वह बेचारा कभी सुदूर बिहार से कलकत्ते में आया था। जैसे भी हो, धन कमाना होगा। अकस्मात् उसे

उस शाम मौका मिल गया। इस पृथ्वी के किस गोलार्ध के किस कोने में बैठे एक आदमी ने न जाने अपनी किस धुन में लड़ाई छेड़ दी और यहाँ कलकत्ते में वह साइकिलवाला हॉकर कुछ पैसे के लालच में गला फाड़कर चिल्लाने लगा — टेलीग्राफ! टेलीग्राफ!

फिर हॉट केक या गरमागरम कचौड़ी की तरह अखवार विकने लगे। स्टेट्समैन, आनन्दवाजार, अमृतवाजार और न जाने कितने दूसरे अखवार। वड़े-वड़े मोटे-मोटे हरफ। विजली की धुंधली रोशनी में वे हरफ हजारों आँखों के सामने मानो झलमलाने लगे। लाखों लाख वम और गोला-वारूद लिये मोटरगाड़ियाँ जर्मनी के कारखानों से निकलकर पोलैंड के देहातों के खेत-खलिहानों में दौड़ने लगीं। पहली सितम्वर, सन् १९३९ ई० के भोर में चार वजकर पैंतालिस मिनट पर यह किस्सा शुरू हुआ। उसके वाद कलकत्ते में सवेरा वीता, दोपहर वीती और शाम हो गयी। प्राणमथ वावू ने कांग्रेस के इलेक्शन का लेकर मीटिंग की है। दीपंकर दफ्तर के वंद कमरे में वैठा आत्मग्लानि से जर्जर हुआ है। लक्ष्मी दी के घर पर ह्विस्की की वोतलें खाली हुई हैं। मिस माइकेल ने शायद फ्री स्कूल स्ट्रीट के अपने फ्लैट में हालीवुड जाने का इंतजाम शुरू कर दिया है! और गांगुली वावू की पत्नी ने शायद उस समय वनारसी साड़ी की तह लगाकर काश्मीर जाने का सपना देखा है। उसी समय साइकिलवाले विहारी हॉकर की चीख से एक साथ सवकी चिंता-धारा में वाधा पड़ी!

—काशी! काशी!

काशी ने दरवाजा खोला तो दीपंकर ने पूछ लिया — ऊपर वत्ती क्यों जल रही है? तूने जला रखी है क्या?

काशी वोला — नहीं, माँ आयी हैं।

माँ? माँ इतनी जल्दी वनारस से लौट आयी! और सव? संतोष चाचा, संतोष चाचा की लड़की! दीपंकर झटपट अंदर पहुँचकर सीढ़ी से ऊपर जाने लगा।

काशी वोला — माँ की तवीयत वहुत खराव है दादा वावू....

मानो दीपंकर के सिर पर गाज ही गिरी! उसे लगा कि उसके जीवन में ही मानो लड़ाई शुरू हो गयी है।

• • •

मां इस तरह अचानक चली आयेगी यह दीपंकर सोच भी न सका था। उसके लिए मां सिर्फ मां ही नहीं है, उसके अपने ही अस्तित्व की तरह है। मां को अलग कर देने पर मानो उसका कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता। मां नहीं है, यह मानो वह सोच भी नही सकता! वही मां घर लौट आयी है, और वह जान भी नहीं सका।

नये मुहल्ले के डाक्टर साहब भी आश्चर्य में पड़ गये थे। उन्होंने कहा था — क्या कोई थोड़ा बीमार भी नहीं पड़ेगा? आप क्यों बेकार इतना घबड़ा रहे हैं?

दीपंकर ने कहा था — आप क्या कह रहे हैं डाक्टर साहब, मां बीमार हो और मैं न घबड़ाऊं?

डाक्टर साहब तो नही जानते थे कि मां दीपंकर के लिए क्या है। डाक्टर साहब तो नही जानते थे कि मां को अलग करके दीपंकर के अस्तित्व की कल्पना भी नही की जा सकती। लेकिन आश्चर्य है कि मनुष्य के जीवन में मां-बाप की छत्रछाया कभी चिरस्थायी नहीं होती। मां-बाप के हमेशा जिंदा रहने में सुख नहीं है, ऐसा सोचना भी सुखकर नहीं है! फिर भी उन दिनों दीपंकर के ध्यान में वह तर्क आया ही नहीं। दवाखाने की भीड़ में पहुंचकर वह न जाने क्यों शिशु के समान असहाय हो जाता था।

वह कहता था — अभी तक मां का बुखार उतर नहीं रहा है डाक्टर साहब, क्या होगा?

डाक्टर साहब कहते थे — आप क्यों इतना घबडा रहे हैं? आपकी मां जरूर ठीक हो जायेंगी।

उस समय दवाखाने में जो लोग होते थे, वे दीपंकर की तरफ देखते थे। इतनी आकुलता और इतनी अधीरता उन लोगों ने पहले कभी किसी में नही देखी थी। लेकिन उधर दीपंकर का ध्यान नही था। उन दिनों वह मानो पागल के समान हो गया था। कब सवेरा होता और कब शाम होती थी, उसे पता ही नही चलता था। सवेरे से शाम तक वह मानो अपना अस्तित्व भी भूला रहता था।

मां कहती थी — तू इतना मत घबड़ा दीपू ....

दीपंकर कहता था — तुम जरा जल्दी ठीक हो जाओ न, मां ....

मां कहती थी — अब मैं ठीक हो जाऊंगी बेटा, देख लेना ....

पहले दिन मां की हालत देखकर दीपंकर सचमुच डर गया था। उसने कहा था — क्या हुआ मां, तुम एकाएक लौट क्यों आयी?

मां ने कहा था — हां बेटा, मैं तुझे छोड़कर वहां नही रह सकी ....

— लेकिन तुम्हीं ने तो वारंवार जाना चाहा था ?

माँ ने कहा था — घर का विश्वनाथ छोड़कर मैं काशी का विश्वनाथ लेकर क्या करूँगी वेटा ?

लौटते ही संतोष चाचा ने रसोईघर सँभाल लिया है। उसने कहा है — वेटा, तुम इधर ध्यान मत दो — मैं हूँ और क्षीरी है — खाने-पीने के मामले में तुम्हें सोचना नहीं पड़ेगा। अब सौदा-सुलुफ़ लाने का काम भी तुम मुझपर छोड़ दो। मैं हर चीज समझ-बूझकर ऐसा लाऊँगा कि तुम्हें कोई दिक्कत नहीं होगी ....

बहुत दिन पहले संतोष चाचा रसूलपुर से आया था, उसके वाद वह एकदम इस परिवार का सदस्य वन गया है। वह सिर्फ इस घर का ही आदमी नहीं वना, वल्कि इस मुहल्ले के लोगों से भी उसकी अच्छी जान-पहचान हो गयी है। किसी-किसी दिन तो सवेरे ही वह ग्वालों से लड़ने लग जाता है। कहता है — भइया, तुम्हें अपने दूध का पैसा नहीं मिलेगा, यह मैं वता देता हूँ। तुम्हारे जो मन में आवे सो करो, लेकिन भइया, पैसा तुम्हें नहीं मिलेगा ....

इस मुहल्ले के लोग भी संतोष चाचा को पहचान गये हैं। वे पूछते हैं — कहिए दत्त वावू, क्या सब्जी लाये ?

इसपर संतोष चाचा कहता है — आपलोग चाहे जो कहें, आपलोगों का यह शहर कोई अच्छी जगह नहीं है। ढाई पाव आलू के सात पैसे माँगता है। आपलोगों के कलकत्ते से मैं तो वाज आया — अपना रसूलपुर ही ठीक है ....

फिर कोई-कोई पूछता है — तो आप रसूलपुर कव लौट रहे हैं ?

संतोष चाचा कहता है — वस, अब क्षीरी की शादी करके ही लौटूंगा। सोच रहा हूँ कि अगले अगहन में ही यह काम निपटा लूँ ....

— लेकिन शुभ कार्य में इतनी देर क्यों कर रहे हैं ?

— अरे, मेरी भाभी फिर वीमार पड़ी है न ! नहीं तो यह काम अव तक हो गया होता ! माँ वीमार है, इस हालत में वेटा कैसे करे शादी वताइए ! आपलोग देख तो रहे हैं कि लड़के को देखने-सुनने वाला कोई वड़ा-बूढ़ा नहीं है — अव मुझे तो दोनों तरफ सँभालना पड़ेगा ....

सड़क पर चलते समय भी संतोष चाचा विना वात किये रह नहीं सकता। कोई फेरीवाला रास्ते से जा रहा होता तो संतोष चाचा उसे वुलाता। कहता — अरे भाई फेरीवाले, क्या है उसमें ? तुम क्या वेच रहे हो ?

फेरीवाला पास आता है। वह सिर पर से टोकरा उतारता है। कहता है — बच्चों के लिए खिलौने हैं ....

— देखूँ, कैसे हैं !

तरह-तरह के खिलौने। रवर के छोटे-छोटे गुब्बारे, चूहे और खरगोश। पेट दवाने पर टें-टें आवाज करता है। एक-एक उठाकर संतोष चाचा देखने लगता है।